ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-1* Issue-3* June- 2016
Anthology : The Research

हिंदी नाटक और भारतेन्दु हरिश्चंद्रः समीक्षा अनुशीलन

सुमन वर्मा
व्याख्याता,
हिंदी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, धौलपुर
राजस्थान, भारत

Abstract

हिन्दी-नाट्य-परंपरा का काल-विभाजन निम्न प्रकार है- पूर्व भारतेन्दु युग (सन् 1867 से पूर्व), भारतेन्दु युग (1867 से 1905), संक्रांति युग (1905 से 1915), प्रसाद युग (सन् 1915 से 1934) और प्रसादोत्तर युग (सन् 1934.....) भारतेन्दु-युग से पूर्व के नाटकों को नाटकीय दृष्टि से सफल नहीं कहा जा सकता। हिन्दी-नाटकों की अविच्छिन्न परंपरा भारतेन्दु जी से शुरू होती है। प्रसाद-युग के आरंभ होने के पहले यह दस वर्ष का काल बड़े महत्व का है। इन दस-ग्यारह वर्षों का नाट्य-साहित्य भारतेन्दु-युग के नाट्य-साहित्य से कई बातों में भिन्न हो गया। संक्रांति युग में अनूदित नाटकों की परंपरा भी चलती रही।

प्रसाद-युग नाट्य साहित्य की कई धाराओं को लेकर सामने आया। प्रसाद-युग में कई पौराणिक नाटक लिखे गये। मैथिलीशरण गुप्त का 'तिलोत्तमा', कौशिक का 'भीष्म तथा गोविन्दबल्लभ पंत का वरमाला' विशेष महत्वपूर्ण हैं। सन् 1934 ई. से हिन्दी नाट्य-साहित्य के आधुनिक युग का प्रारंभ होता है। इस युग में नाट्य-साहित्य के नवीन प्रयोग हुए। द्वितीय उत्थान काल (सन् 1942 से) में नाटक के क्षेत्र में ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों की रचना विशेष रूप से हुई। स्वतंत्रता प्राप्त होने पर कतिपय राष्ट्रीय भावना प्रधान नाटक भी लिखे गये।

प्रस्तुत शोध अध्ययन प्रमुखतः द्वितीयक तथ्यों अर्थात पूर्व में संकलित और प्रकाशित तथ्यों और आगम रीति पर आधारित है। इसके अंतर्गत हिंदी नाटक की विकास यात्रा को संक्षेप में बताने का प्रयास किया गया है तथा विशेष रूप से हिंदी नाटक के विकास में भारतेन्दु हरिश्चंद्र के योगदान पर प्रकाश डाला गया है।

मुख्य शब्दः हिंदी, नाटक, समीक्षा, अनुशीलन, विधा, कथानक, पात्र, संवाद, रंगमंच, जनक।

प्रस्तावना

हिन्दी-नाट्य-परंपरा का काल-विभाजन निम्न प्रकार है- पूर्व भारतेन्दु युग (सन् 1867 से पूर्व), भारतेन्दु युग (1867 से 1905), संक्रांति युग (1905 से 1915), प्रसाद युग (सन् 1915 से 1934) और प्रसादोत्तर युग (सन् 1934.....) भारतेन्दु-युग से पूर्व के नाटकों को नाटकीय दृष्टि से सफल नहीं कहा जा सकता। हिन्दी-नाटकों की अविच्छिन्न परंपरा भारतेन्दु जी से शुरू होती है। प्रसाद-युग के आरंभ होने के पहले यह दस वर्ष का काल बड़े महत्व का है। इन दस-ग्यारह वर्षों का नाट्य-साहित्य भारतेन्दु-युग के नाट्य-साहित्य से कई बातों में भिन्न हो गया। संक्रांति युग में अनूदित नाटकों की परंपरा भी चलती रही।

प्रसाद-युग नाट्य साहित्य की कई धाराओं को लेकर सामने आया। प्रसाद-युग में कई पौराणिक नाटक लिखे गये। मैथिलीशरण गुप्त का 'तिलोत्तमा', कौशिक का 'भीष्म तथा गोविन्दबल्लभ पंत का वरमाला' विशेष महत्वपूर्ण हैं। सन् 1934 ई. से हिन्दी नाट्य-साहित्य के आधुनिक युग का प्रारंभ होता है। इस युग में नाट्य-साहित्य के नवीन प्रयोग हुए। द्वितीय उत्थान काल (सन् 1942 से) में नाटक के क्षेत्र में ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों की रचना विशेष रूप से हुई। स्वतंत्रता प्राप्त होने पर कतिपय राष्ट्रीय भावना प्रधान नाटक भी लिखे गये।

प्रस्तुत शोध अध्ययन प्रमुखतः द्वितीयक तथ्यों अर्थात पूर्व में संकलित और प्रकाशित तथ्यों और आगम रीति पर आधारित है। इसके अंतर्गत हिंदी नाटक की विकास

यात्रा को संक्षेप में बताने का प्रयास किया गया है तथा विशेष रूप से हिंदी नाटक के विकास में भारतेन्दु हरिश्चंद्र के योगदान पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तावना

नाटक हिंदी गद्य की एक महत्वपूर्ण विधा है जिसके अंतर्गत किसी कथानक का पात्र संरचना और संवाद के माध्यम से मंचीय प्रस्तुत किया जाता है। हिन्दी में अव्यावसायिक साहित्यिक रंगमंच के निर्माण का श्रीगणेश आगाहसन 'अमानत' लखनवी के 'इंदर सभा' नामक गीति-रूपक से माना जा सकता है। परंतु, भारतेन्दु हरिश्चंद्र को हिंदी नाटक का जनक माना जाता है क्योंकि सर्वप्रथम उन्होंने ही वास्तव में हिंदी नाटक को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। भारतेन्दु तथा उनके समकालीन नाटककारों का नाटक लेखन का प्रमुख उद्देश्य था- लोक चेतना का विकास जिससे लोग अपने सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण को समझने हेतु चेतना विकसित कर सकें।

ऐसा नहीं है कि भारतेन्दु से पहले हिंदी में नाटक नहीं लिखे गए और नाट्य मंचन नहीं हुआ। भारतेन्दु से पूर्व भी हिन्दी रंगमंच और नाट्य-रचना के अनेकों व्यावसायिक तथा अव्यावसायिक साहित्यिक प्रयास तो हुए, परंतु, इसमें कोई संदेह नहीं कि हिंदी का वास्तविक और स्थायी रंगमंच कोई भी निर्मित और विकसित नहीं कर पाया। हिंदी साहित्य की ऐतिहासिक दृष्टि से सन् 1850 ई. से सन् 1868 ई., अर्थात लगभग 18 वर्ष तक हिन्दी रंगमंच का उदय और प्रचार-प्रसार ही हुआ, न कि उसका सुरुचिपूर्ण विकास और स्थायी निर्माण।

पारसी नाटक मंडलियों एवं अन्य मंडलियों ने जगह-जगह अव्यवस्थित नाट्य प्रस्तुत कर नाटक के प्रसार-प्रचार में योगदान तो दिया, परंतु साहित्यिक सुरुचि सम्पन्नता का उनमें भी अभाव ही रहा।अन्य शब्दों में, भारतेन्दु से पूर्व हिंदी नाटक के विकास के लिए तत्कालीन परिस्थितियां पर्याप्त रूप से अनुकूल थीं और कुछ अच्छे नाटककार भी हिंदी को मिले, परंतु उपलब्ध अवसर और परिस्थिति का लाभ नहीं उठाया जा सका।

प्रायः रीवा नरेश विश्वनाथ सिंह के बृजभाषा में लिखे गए नाटक 'आनंद रघुनंदन' और भारतेन्दु के पिता श्री गोपालचंद्र के 'नहुष' (1841) को प्रारंभिक हिंदी नाटक माना जाता है, परंतु 'नहुष' तथा 'आनंदरघुनंदन' पूर्ण नाटक नहीं थे क्योंकि न पर्दों और दृश्यों आदि की योजना वाला विकसित रंगमंच ही निर्मित हुआ था; नाट्यारंगन के अधिकतर प्रयास भी अभी तक मुंबई आदि अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में ही हुए थे और भाषा का स्वरूप भी हिन्दी-उर्दू का मिश्रित खिचड़ी रूप ही था।

भारतेन्दु का नाट्य लेखन 1867 से प्रारम्भ हुआ जब उन्होंने बंगला भाषा में लिखे विद्यासुंदर नाटक का हिंदी में सफल अनुवाद किया। भारतेन्दु ने खड़ीबोली में नाट्य लेखन कर हिंदी नाटक की नींव रखी और इसे अपने प्रयासों से सुदृढ बनाकर नया इतिहास सृजित किया।हिंदी नाट्य साहित्यिक ऐतिहासिक दृष्टि से वर्ष 1868 विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी वर्ष भारतेन्दु के नाटक-लेखन और मंचीकरण का श्रीगणेश हुआ। भारतेन्दु ने ही प्रथम बार रंगमंच पर पात्रों के प्रवेश-गमन, दृश्य-योजना आदि से युक्त नाटक लिखा।

भारतेन्दु के समय में उच्च कुल के लोग अभिनय करने से दूरी बना कर रखते थे और वे अभिनय कला को हीन भावना से देखते थे। इस तथ्य का उल्लेख है कि 3 अप्रैल 1868 को पं. शीतलाप्रसाद त्रिपाठी रचित एवं 'बनारस थियेटर' में आयोजित 'जानकी मंगल' नाटक में लक्ष्मण की भूमिका निभाने वाले लड़के के अचानक बीमार हो जाने पर यह भूमिका अपने अभिजात्य की परवाह किये बिना भारतेन्दु प्रभावपूर्ण तरीके से की। इस प्रकार इस नाटक से भारतेन्दु ने रंगमंच पर सक्रिय भाग लेना आरम्भ किया। इसी समय-उन्होंने नाट्य-सृजन भी आरम्भ किया।

भारतेन्दु ने सन् 1868 ई. से सन् 1885 ई. तक अनेकों नाटकों का सृजन किया, साथ ही अनेकों नाटकों में स्वयं अभिनय भी किया, अनेकों रंगशालाएँ निर्मित कराईं और हिन्दी रंगमंच के स्थापन का स्तुत्य प्रयास किया। वह अनेकों लेखकों और रंगकर्मियों के लिए नाट्य-सृजन और अभिनय के प्रेरणा स्रोत बने।

भारतेन्दु के नाट्य लेखन और अभिनय प्रेम और समर्पण को इस तथ्य से आँका जा सकता है कि भारतेन्दु के जीवन काल में अनेकों महत्वपूर्ण रंग-संस्थाएँ स्थापित हुईं, जैसे-काशी में भारतेन्दु के संरक्षण में नेशनल थियेटर की स्थापना हुई जहाँ उन्होंने अपना 'अंधेर नगरी' प्रहसन इस थियेटर के लिए एक ही रात में लिखा था; प्रयाग में 'आर्य नाट्यसभा' स्थापित हुई जिसमें लाला श्रीनिवासदास का 'रणधीर प्रेममोहिनी' प्रथम बार अभिनीत हुआ था; कानपुर में भारतेन्दु के सहयोगी पं. प्रतापनारायण मिश्र ने हिन्दी रंगमंच का नेतृत्व किया और भारतेन्दु के 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, 'सत्य हरिश्चन्द्र, 'भारत-दुर्दशा, 'अंधेर नगरी' आदि नाटकों का अभिनय कराया। इनके अतिरिक्त बलिया, डुमराँव, लखनऊ आदि उत्तर प्रदेश के कई स्थानों और बिहार प्रदेश में भी हिन्दी रंगमंच और नाट्य-सृजन की दृढ़ परम्परा का निर्माण हुआ।

यद्यपि भारतेन्दु से पूर्व नाट्य-शैली में कुछ सृजन-प्रयास तो किये गए थे,परंतु नाटक के वास्तविक रूप का उद्भव सर्वप्रथम भारतेन्दु की ही लेखिनी से हुआ। भारतेन्दु ने संस्कृत तथा प्राकृत की पूर्ववर्ती भारतीय नाट्य-परम्परा और बँगला की

समसामयिक नाट्यधारा के साथ अंग्रेजी प्रभाव-धारा से नाट्य लेखन, अभिनय और रंगमंच स्थापत्य की प्रेरणा ली।

भारतेन्दु ने भास, कालीदास, भवभूति, शूद्रक आदि समृद्ध संस्कृत नाट्य-परम्परा को अपने सम्मुख रखा। संस्कृत के मुरारि, राजशेखर, जयदेव आदि की क्रमशः ‘अनर्घराघव, ‘बालरामायण, ‘प्रसन्नराघव’ आदि रचनाओं ने भारतेन्दु और उनके सहयोगी लेखकों को अपनी ओर विशेष रूप से आकर्षित किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समक्ष अनेकों चुनौतियां थीं, परंतु निरंतर प्रयासरत रहते हुए उन्होंने हिंदी के साहित्यिक रंगकर्म और नाट्य-लेखन की दृढ़ परम्परा को स्थापित कर हिंदी नाटक को नवीन दिशा प्रशस्त की जो भविष्य की अनेकों पीढ़ियों के लिए अनुकरणीय रही।

सन् 1885 ई. में भारतेन्दु का आकस्मिक निधन हिंदी नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में बहुत बड़ी क्षति थी क्योंकि उनके निधन के बाद नाट्य लेखन और रंगमंचीय उत्साह मन्द पड़ गया। 19 वीं शती के अन्तिम दशक इस दिशा में पुनः प्रयास प्रारम्भ हुए जिसके परिणामस्वरूप अनेकों नाटक मंडलियां अस्तित्व में आईं जैसे- प्रयाग की ‘श्रीरामलीला नाटक मंडली’ तथा ‘हिन्दी नाट्य समिति, श्रीकृष्णचन्द्र और श्री ब्रजचन्द्र-द्वारा काशी में स्थापित ‘श्री भारतेन्दु नाटक मंडली’तथा ‘काशी नागरी नाटक मंडली’ ‘महाराणा प्रताप, ‘सत्य हरिश्चन्द्र, ‘महाभारत, ‘सुभद्राहरण, ‘भीष्मपितामह, ‘बिल्व मंगल, ‘संसार स्वप्न, ‘कलियुग आदि अनेक नाटकों का अभिनय इन नाटक मंडलियों द्वारा ही सम्पादित हुआ।

धनाभाव तथा सरकारी और गैर-सरकारी प्रोत्साहन के अभाव इन नाटक मंडलियों के विकास में बाधा का कार्य किया जिसके कारण ये लम्बे समय तक नहीं चल सकीं। साहित्यिक रंगमंच की स्थापना के प्रयत्न कालान्तर में सब सो गए। परंतु यह उल्लेखनीय है कि छुटपुट प्रयासों के अन्तर्गत अनेकों तत्कालीन साहित्यिक नाटकों का अभिनय हुआ और हिन्दी में कुछ अच्छे रंगमंचानुकूल साहित्यिक नाटकों की रचना हुई।

भारतेन्दु की मृत्यु के पश्चात् प्रमुख रूप से पारसी रंगमंच सक्रिय रहा, परंतु 20 वीं शताब्दी के तीसरे दशक में सिनेमा के आगमन ने पारसी रंगमंच को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया। इसके बाद हिंदी रंग मंच केवल स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों तक सीमित हो गया और नाटकों के स्थान पर एकांकियों को उनकी सरल प्रकृति, कम पात्र संख्या और साथ ही लोगों के पास समयाभाव के कारण प्रोत्साहन दिया जाने लगा।

डॉ० राम कुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, सेठ गोविन्द दास, जगदीशचन्द्र माथुर आदि हमारे अनेक नाटककारों ने सुन्दर अभिनय-उपयोगी एकांकी नाटकों तथा दीर्घ नाटकों की रचना की है। प्रसाद जी ने उच्चकोटि के साहित्यिक नाटक रच कर हिन्दी नाटक साहित्य को समृद्ध किया था। प्रसादोत्तर आधुनिक नाटककारों ने कुछ बहुत सुन्दर रंगमंचीय नाटकों की सृष्टि की। इन नाटककारों के अनेक पूरे नाटक भी रंगमंचों से प्रदर्शित हुए।

स्वतंत्रता के पश्चात हिंदी नाटक में अनेकों परिवर्तन हुए, यथा- हिन्दी रंगमंच के स्थायी निर्माण की दिशा में अनेक सरकारी-गैर-सरकारी प्रयत्न , गैर-सरकारी संस्थाओं को रंगमंच की स्थापना के लिए आर्थिक सहायता, पुरुषों के साथ स्त्रियों द्वारा अभिनय, सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं से संबद्ध स्थायी रंगमंचों का निर्माण, नाटककारों और कलाकारों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से संगीत नाटक अकादमी की स्थापना आदि।

हिंदी नाटक और रंगमंच को जिन हिंदी साहित्यकारों द्वारा ऊँचाई प्रदान की गई है, उनमें अनेकों नाम हैं जैसे- भारतेन्दु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, जगदीशचंद्र माथुर, लक्ष्मीनारायण लाल, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रामकुमार वर्मा, मोहन राकेश धर्मवीर भारती, स्वदेश दीपक, नंदकिशोर आचार्य, नाग बोडस, मणि मधुकर, हरिकृष्ण प्रेमी, भीष्म साहनी, उपेंद्रनाथ अश्क, योगेश त्रिपाठी आदि।

उद्देश्य

1. हिंदी साहित्य के इतिहास पर प्रकाश डालना
2. हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं के बारे में जानकारी प्रदान करना
3. हिंदी नाटक के माध्यम से हिंदी गद्य साहित्य को समझाना
4. हिंदी नाटक के उद्भव और विकास की समीक्षा करना
5. वर्तमान में नाटक में उभरते प्रतिमानों पर प्रकाश डालना

प्राक्कल्पना

1. हिंदी साहित्य का इतिहास प्राचीन, विशद और विभिन्न युगों में विभक्त है
2. गद्य और पद्य हिंदी साहित्य की दो प्रमुख विधाऐं हैं
3. हिंदी गद्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा नाटक है जिसके अंतर्गत पात्रों द्वारा किये जाने वाले संवादों की सहायता से कथानक का यथार्थपूर्ण मंचन किया जाता है
4. नाटक समाज की समकालीन दशाओं को मंच के माध्यम से प्रदर्शित करने का सर्वाधिक प्रभावी तरीका है
5. वर्तमान में नाटक के अलावा एकांकी का अधिक प्रचलन है

साहित्य पुनरावलोकन

1. देवेन्द्र स्वामी (2002) ने अपने शोध प्रबंध 'बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में हिंदी नाटक : दृष्टि एवं शिल्प' के अंतर्गत उल्लेख किया है कि 'विवेच्य नाटककारों ने समसामयिक समाज में व्याप्त भोगलिप्सा की भावना और व्यक्ति के गिरते चरित्र पर दृष्टिपात करते हुए दिखाया है कि

आज का व्यक्ति न अपनी पत्नी का रहा है, न समाज का, न नैतिकता का, बल्कि वह भोग का है'।[1]

2. वेंकट रेड्डी पोथुराजू (2003) ने अपने शोधप्रबंध 'हिंदी नाटक: परिवर्तन के विविध आयाम (1950 से 2000 तक)' के अंतर्गत लिखा है कि 'आधुनिक युग में नाटक केवल मनोरंजन तक ही सीमित न होकर एक गहरी सोच प्रदान करने वाली विधा के रूप में है। साहित्य की अन्य विधाओं के परिप्रेक्ष्य में जब हम नाट्य विद्या को अधिक उत्कृष्ट होने का समर्थन करते हैं, तो इसी आधार पर कि उसकी सम्प्रेषणीयता की नींव मानव मन की गहराइयों तक अधिक है'।[2]
3. दिनेश कुमार भीमजी भाई कापड़िया (2005) ने अपने शोध अध्ययन 'डॉ. शंकरशेष के नाटकों में समसामयिकता' के अंतर्गत यह तथ्य निरूपित किया है कि 'नाटक में जीवन के यथार्थ की सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करने की सम्भावनाऐं रहती हैं। नाटक लोक की वस्तु है, लोक के लिए है और लोक से ही उद्भूत होती है। यदि नाटक में समसामयिक यथार्थ जीवन के स्पंदन नहीं हो तो उसे नाटक कहना बेमानी होगा'।[3]
4. श्रीमती उर्मिला शुक्ला व सूरज कुमार देवांगन (2014) ने अपने संयुक्त शोध अध्ययन 'वर्तमान हिंदी नाटक परिदृश्य एवं विभु कुमार खरे के नाटकों का आकलन' के अंतर्गत स्पष्ट किया है कि 'नाटक एक ऐसी विधा है जो दृश्य भी होता है और श्रव्य भी। मानव सभ्यता के प्रारंभ काल से ही कहीं न कहीं नाटक का बीच निहित था। संगीत, नृत्य, संवाद एवं अभिनय ये सभी नाट्यकला के अभिन्न अंग हैं।
जंगलों में निवास करता हुआ मनुष्य जब एकाकी जीवन व्यतीत करता था, तब भी संगीत एवं नृत्य उसके साथी थे। धीरे-धीरे मनुष्य ने जब अपना समाज बनाया तो वे कलायें संघटित होकर मनोरंजन का एकमात्र साधन बन गई। इस मनोरंजन के साधन को नाटक की संज्ञा मिली। वैसे तो प्रमुख रूप से हिन्दी नाट्य-साहित्य का उद्भव भारतेन्दु के नाट्य-साहित्य से माना जाता है।
उन्होंने प्रथम चरण में नाटक को जिस सीमा तक पहुँचाया, वहीं से जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी नाटक की विकास परम्परा का दूसरे चरण का सूत्रपात किया। प्रसाद कृत नाटकों जिसमें सांस्कृतिक क्षति, नैतिक पतन एवं सामाजिक जड़ता आदि प्रवृत्तियां सम्मिलित थी, उनसे हिन्दी नाटक की विकास परम्परा में भी वृद्धि हुई है। प्रसाद युगीन अन्य नाटककारों में सुदर्शन, गोविंद वल्लभ पंत, बद्रीनारायण भट्ठ, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र आदि प्रमुख हैं'।[4]
5. लाल सिंह पुरोहित (2015) ने अपने शोध प्रबंध ' डॉ. बद्री प्रसाद पंचोली के नाटकों का आलोचनात्मक अध्ययन' के अंतर्गत नाटकों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए टिप्पणी की है कि 'साहित्य का केन्द्रीय विषय व्यक्ति और समाज है। साहित्यकार का यह उत्तरदायित्व है कि वह अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज और उसकी मूल प्रवृत्तियों को प्रदर्शित कर लोक चेतना का विकास करे। साहित्यकार की विचारधारा उसके व्यक्तित्व पर आधारित होती है। गद्य की समस्त विधाओं में नाटक का स्थान सर्वोपरि रहा है। साहित्यकारों ने समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं को नाटक लेखन हेतु चुना है और उनके मंचन द्वारा समाज के लोगों को उनसे परिचित करवाया है और साथ ही उक्त समस्याओं के निदान हेतु सुझाव भी सुझाये हैं'।[5]

शोधपद्धति

इस शोध अध्ययन हेतु लेखिका द्वारा निम्न प्रक्रिया अपनाई गई-

1. विषय का चुनाव
2. उद्देश्यों का निर्धारण
3. प्राक्कल्पना का निर्माण
4. शोध प्ररचना का निर्धारण
5. सम्बंधित साहित्य का अध्ययन
6. सामग्री विश्लेषण
7. व्यवस्थित लेखन
8. निष्कर्ष लेखन

निष्कर्ष

हिंदी से पहले संस्कृत और प्राकृत में समृद्धि नाट्य-परंपरा थी लेकिन हिंदी नाटकों का विकास आधुनिक युग से ही संभव हो सका ।मध्यकाल में रासलीला, रामलीला, नौटंकी आदि का उदय होने से जन नाटकों का प्रचलन बढ़ा यह नाटक मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। कथोपकथन, अंक विभाजन, रंग संकेत आदि के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आनंद रघुनंदन को हिंदी का प्रथम मौलिक नाटक माना है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में पारसी थिएटर कंपनियां अस्तित्व में आ चुकी थी। इनका प्रमुख उद्देश्य विभिन्न नाटकों द्वारा जनता का मनोरंजन करना था ।

जिस तरह हिंदी कहानी व उपन्यास में प्रेमचंद का स्थान केंद्रीय महत्व का है, उसी तरह हिंदी नाटकों में जयशंकर का है। खड़ी बोली में प्रथम आधुनिक नाटक लिखने का श्रेय भारतेंदु को है। भारतेंदु का युग नाट्य साहित्य का प्रथम चरण है। भारतेंदु के नाटकों का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ जनसामान्य को जागृत

करना तथा उसमें आत्मविश्वास जगाना था। भारतेंदु युगीन नाटकों में प्राचीन – नवीन शैलियों का सामंजस्य दिखाई देता है।

द्विवेदी युग में पौराणिक, ऐतिहासिक , सामाजिक , एवम रोमांचकारी नाटक लिखे गए कुछ प्रहसन भी लिखे गए। जयशंकर प्रसाद के आगमन से नाटक के विकास को नई दिशा मिली। भारत के अतीत की खोज एवं वर्तमान समस्याओं व दुर्बलताओं से लड़ने का साहस प्रसाद के नाटकों की प्रेरणा बने। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत हिंदी नाटक साहित्य में कई नई प्रवृत्तियां दिखाई पड़ती है जो इस प्रकार है – आधुनिकता बोध एवं विसंगति बोध, पाश्चात्य शिल्प, नुक्कड़ नाटक। हिंदी नाटक का इतिहास बहुत लम्बा है जिससे प्रेरणा पाकर वर्तमान में भी नाटक में अनेकों प्रतिमान उभर रहे हैं और नाटक विधा को आगे बढ़ा रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. *देवेन्द्र स्वामी, 'बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में हिंदी नाटक : दृष्टि एवं शिल्प', महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, 2002*
2. *वेंकट रेड्डी पोथुराजू, 'हिंदी नाटक: परिवर्तन के विविध आयाम (1950 से 2000 तक)', हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, 2003*
3. *दिनेश कुमार भीमजी भाई कापड़िया, 'डॉ. शंकरशेष के नाटकों में समसामयिकता', हिंदी विभाग, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, 2005*
4. *श्रीमती उर्मिला शुक्ला व सूरज कुमार देवांगन, 'वर्तमान हिंदी नाटक परिदृश्य एवं विभु कुमार खरे के नाटकों का आकलन', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एडवांसेज इन सोशल साइंसेज, वॉल्यूम 2, इशू 2, 2014*
5. *लाल सिंह पुरोहित, 'डॉ. बद्री प्रसाद पंचोली के नाटकों का आलोचनात्मक अध्ययन', हिंदी विभाग, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान), 2015*
6. *https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A5%80_%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%9F%E0%A4%95*